काम और शिक्षा : थुलीर के अनुभव



अनु तथा कृष्ण

सेल्वन (परिवर्तित नाम) झिझकता हुआ हमारे पास आया और बोला कि "मैं सीखना चाहता हूँ। क्या आप कृपा करके मेरी मदद कर सकते हैं?" सोलह वर्ष के उस संकोची युवक ने रुक–रुक कर हमें अपनी कहानी सुनाई। "मैं कक्षा 10 की अपनी बोर्ड परीक्षाओं में चार विषयों में फेल हो गया हूँ, और मैंने स्कूल जाना बन्द कर दिया है"। वह स्पष्ट रूप से स्वयं को अकादमिक दुनिया के एक असफल उदाहरण की तरह देखता था।

सेल्वन तो उन हजारों बच्चों में से सिर्फ एक है जो हमारी शिक्षा व्यवस्था में असफल लोगों की तरह पीछे छूट जाते हैं। हमारे देश में औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम अकादमिक कौशलों को पढ़ाने और सीखने की ओर अत्यधिक रूप से झुके हुए हैं। इसका आधार हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि अकादमिक कौशल ही सशक्तीकरण की ओर बढ़ने का मार्ग हैं। अकसर पारम्परिक व्यावसायिक कौशलों की तुलना में अकादमिक अहर्ताओं की श्रेष्ठता पर शिक्षकों और व्यवस्था के द्वारा जरूरत से ज्यादा जोर दिया जाता है। व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं की बुरी तरह उपेक्षा की जाती है और उन्हें बहुत कम संरक्षण दिया जाता है।



अकादमिक और व्यावसायिक क्षेत्रों के बीच की इस खाई को पहली बार 25 साल पहले हमने तब अनुभव किया, जब ग्रामीण क्षेत्र में काम करने वाले वास्तुकारों के रूप में, ग्रामीण कारीगरों को राजमिस्त्री का कौशल सिखाना शुरू किया। हम पर्यावरण के लिए हितकारी ऐसी निर्माण प्रौद्योगिकी विधाओं पर ध्यान दे रहे थे जो स्थानीय सामग्री, जैसे मिट्टी का गारा, का उपयोग करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के राजमिस्त्री आमतौर पर मिट्टी के गारे और स्थानीय सामग्री से निर्माण करने के इच्छुक नहीं थे, इसलिए हमें मजबूरन 'अकुशल मजदूर' कहलाने वाले लोगों, अर्थात ऐसे युवाओं के साथ काम करना पड़ा जो वास्तव में स्थानीय सामग्री से निर्माण करने वाले पारम्परिक प्रचलनों के अच्छे जानकार थे। आरम्भ में हमने उन्हें मकान बनाने में लगने वाले विभिन्न अवयवों के सुधरे हुए रूपों का उत्पादन करना और राजमिस्त्रियों के व्यावहारिक कौशल सिखाना शुरू किया। हमारा प्रशिक्षण उनके लिए खुद के और उनके पड़ोसियों के मकान बनाने के लिए तथा बेहतर मजदूरी कमाने के लिए उपयोगी साबित हुआ। लेकिन हुक्म चलाने वाले ठेकेदारों और स्थापित राजमिस्त्रियों के सामने वे अभी भी अपने नए कौशलों का इस्तेमाल करने में झिझकते थे और कभी भी जोर देकर अपनी बात नहीं कहते थे। उनकी इस झिझक को मिटाने के लिए, हमने उन्हें उपयोगी तकनीकें (जैसे कि निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री के परिमाणों का अनुमान लगाना ,उनका हिसाब लगाना, तकनीकी ढंग से नक्शा बनाना और मकानों के नक्शों को पढ़ना) सिखाने का निर्णय लिया। हमने उनके पढ़ने, लिखने और अंकगणित के कौशलों को भी थोड़ा बढ़ाने की कोशिश की, बस इतना कि वे, दूसरे पारम्परिक ठेकेदारों या राजमिस्त्रियों पर निर्भर हुए बिना स्वयं अपने बल पर छोटे ठेके ले सकें और उन्हें पूरा कर सकें तथा इस तरह बेहतर जीविका कमा सकें।

हम कुछ हद तक ऐसा करने में सफल भी हुए, लेकिन कारीगरों में निरक्षर और अशिक्षित होने की आम भावना इतनी प्रबल थी कि उससे उबर पाना उनके लिए कठिन था। उनमें आत्मविश्वास का अभाव भी था। यह तथ्य कि वे स्कूलों को बीच में 'छोड़ देने वाले' और इसलिए 'असफल लोग' हैं, उनके गले में लटका एक ऐसा भारी बोझ था जिससे



छुटकारा पाना कठिन था। ये लोग 18 से 32 वर्ष की आयु वाले वयस्क व्यक्ति थे। हमें महसूस हुआ कि यदि ऐसे लोगों की 'अशिक्षित' होने की आत्मछवि में हमें कोई प्रभावकारी परिवर्तन लाना था, तो हमें थोड़ी कम उम्र वाले लोगों के साथ, ज्यादा लम्बी अवधियों तक काम करने की जरूरत थी। हम जिन प्रशिक्षार्थियों के साथ काम करते थे उन्हें हमने कम उम्र से ही लेना शुरू किया और साथ ही प्रशिक्षण सत्रों की अवधि और उनके विषयों का दायरा भी बढ़ाया। हम आमतौर पर इसमें सफल हुए कि वे कौशलों को सीखने के लिए प्रेरित हुए। वे परियोजनाओं की जिम्मेदारी लेने की अपनी योग्यता में विश्वास करने लगे और उन कामों को सफलतापूर्वक पूरा करने लगे। उत्तरोत्तर उच्च गुणवत्ता वाले निर्माण कार्य सम्पन्न करने लगे। उनकी आमदनी के स्तर भी ऊपर उठे और उनमें दूर के स्थानों तक यात्रा करने और वहाँ अन्य समुदायों के लोगों के लिए निर्माण कार्य करने के लिए ज्यादा आत्मविश्वास आ गया। फिर भी जब बात उनकी आत्मछवि की होती थी, तो औपचारिक शिक्षा का अभाव एक ऐसी खामी थी जिसे भूल पाना उनके लिए मुश्किल था। समाज भी ऐसे लोगों को सामाजिक और आर्थिक, दोनों रूपों में उचित सम्मान नहीं देता, चाहे वे कितने भी प्रतिभाशाली या हुनरमन्द हों।



फिर 10 साल पहले हम एक आदिवासी गाँव, सित्तिलिंगी, में जाकर बस गए। वहाँ बच्चों तथा बड़ों के लिए एक मुक्त शिक्षा केन्द्र, थुलीर, आरम्भ किया जहाँ वे सीखें और सीखने के आनन्द को जान सकें। वह एक ऐसे अनौपचारिक केन्द्र के रूप में स्थापित किया गया था जहाँ स्कूल जाने वाले बच्चे स्कूल के समय के बाद और सप्ताहान्तों के दौरान आ सकते थे। हमारे सत्रों में कहानियाँ सुनाने, पढ़ने, बुनियादी भाषा और गणित सीखने से लेकर विज्ञान की गतिविधियों और विभिन्न कलाओं और हस्तकलाओं तक सभी कुछ होता था। उस केन्द्र में कोई नामांकन, उपस्थिति दर्ज करने या शुल्क जैसी कोई भी बाधा नहीं थी, इसलिए विद्यार्थी पूरी तरह स्वेच्छा से ही आते थे। हमारा मानना है कि सीखना सर्वोत्तम ढंग से तभी होता है जब उसके पीछे स्वयं की प्रेरणा हो।

दो सालों के भीतर कुछ विद्यार्थियों ने, जो 14 साल या उससे अधिक उम्र के थे और जो स्कूल छोड़ चुके थे, पूरे समय केन्द्र का उपयोग करना शुरू कर दिया। उन्होंने हमसे उन्हें सीखने में मदद करने का अनुरोध किया। सेल्वन भी उनमें से एक था। इन विद्यार्थियों ने कहा कि थुलीर में होना उन्हें अच्छा लगता था और स्कूल उनके बस की बात नहीं थी (कक्षा 8 के बाद वहाँ के विद्यार्थियों को बहुत दूर के गैर–आदिवासी स्कूल में जाना पड़ता था)। उनके बुनियादी अकादमिक कौशल बहुत ही निम्न स्तर के या पूरी तरह नदारद थे। उनका आत्मविश्वास भी बहुत हीन स्तर का था क्योंकि वे शिक्षा व्यवस्था द्वारा 'असफल' करार दिए जा चुके थे। इसलिए उन्हें केवल प्रारम्भिक पढ़ने और लिखने के कौशल सिखाना शुरू करना हमें बहुत सार्थक नहीं लगा। हमने तय किया कि उनके लिए 'हाथों से करने वाले' काम शुरू किए जाएँ, क्योंकि हमने सोचा कि इससे उन्हें ऐसी गतिविधि में संलग्न होने का अवसर मिलेगा जिसमें अपनी काबिलियत के बारे में उन्हें ज्यादा भरोसा था। साथ ही उस गतिविधि के माध्यम से ही लिखने और बुनियादी गणित के कौशलों से परिचय करवाया जाए। यह ऐसा काम था जो हम पहले अपने मकान बनाने वाले कारीगरों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में कर चुके थे।

हमने बिजली के तारों को घर में लगाना सिखाने से शुरुआत की, क्योंकि पहले बैच के बहुत से विद्यार्थियों की उसमें रुचि थी। तब इसे 'बढ़िया' काम की तरह देखा जाता था क्योंकि आपको धूप में काम नहीं करना पड़ता था और न ही अपने हाथ गन्दे करना पड़ते थे। संयोग से इसका अवसर



अपने–आप उपलब्ध हो गया, जब चेन्नई से एक कुशल बिजली का कारीगर एक पड़ोसी के घर कुछ काम करने के लिए आया। मधुमक्खी–पालन अगली गतिविधि थी क्योंकि एक एन.जी.ओ. के कुछ मित्रों ने विशेष रूप से आदिवासी लोगों को यह सिखाने की पेशकश की। धीरे–धीरे, हमने नल और पाइपों को लगाना (प्लम्बिंग), राजमिस्त्री का काम, बाँस का फर्नीचर बनाना, साइकिल और मोटरसाइकिल सुधारना, सौर पीवी (फोटोवोल्टेइक) प्रकाश व्यवस्था करना, पुर्जों को जोड़कर एल.ई.डी. बल्ब बनाना, कम्प्यूटर के कौशल, जैविक खेती आदि काम भी जोड़े। हमारी कोशिश जहाँ तक सम्भव हो, हमारे परिसर में और उसके आसपास के वास्तविक जीवन के प्रोजेक्ट लेने की रहती थी, ताकि प्रोजेक्टों के परिणाम ऐसी काम आने वाली गतिविधियाँ और सेवाएँ हों जो समुदाय द्वारा इस्तेमाल की जाएँ। हमें लगता था कि इससे काम अर्थपूर्ण बनेगा और उसे करने वालों को संतोष और गर्व का अनुभव होगा। इसके अलावा, वे यह भी देख सकेंगे कि उनके प्रयास वास्तविक जीवन में कितने कारगर साबित होते हैं, और इस तरह उन्हें स्वयं का आकलन करने और सुधार करने के लिए लोगों की प्रतिक्रियाएँ भी मिलेंगी। उन्होंने प्रत्येक परियोजना के बारे में अलग–अलग लिखना, उसके लिए रिकार्डों को दर्ज करके रखना और उससे सम्बन्धित गणनाएँ करना सीखा। उदाहरण के लिए, यदि वे जैविक पद्धति से धान की खेती कर रहे होते थे, तो वे खेत के क्षेत्रफल को नापना सीखते, खेती में लगने वाली सामग्री और मजदूरी के रिकार्ड रखते, पौधों के बढ़ने का हाथ से और कम्प्यूटर से, दोनों प्रकार से लेखाचित्र (ग्राफ) बनाते, हिसाब–किताब का लेखा रखते आदि। यदि वे एक दीवार बना रहे होते, तो वे उसका नक्शा बनाना, उसमें लगने वाले ब्लाकों की संख्या का अनुमान लगाना, खर्च का हिसाब लगाना इत्यादि सीखते।

विभिन्न प्रकार के हाथ से किए जाने वाले कामों की परियोजनाएँ जानबूझ कर आरम्भ करने के पीछे कुछ मुख्य कारण थे – सबसे पहले तो किसी दिए गए परिसर या समुदाय में एक ही प्रकार की गतिविधि को कई बार करने की सीमा होती है। दूसरे, हमें लगा कि प्रत्येक विद्यार्थी को एक या दो प्रकार के कार्यों से अधिक का अनुभव प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण था, ताकि वे सचेत रूप से यह जान सकें कि किस प्रकार का काम करने में वे स्वाभाविक रूप से अच्छे हैं या उसे आगे करते रहने में उनकी रुचि है। इस तरीके से अलग–अलग विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार अलग–अलग प्रकार के व्यवसाय चुन सकते थे और साथ ही उन्हें आसपास के क्षेत्र में काम के अवसर भी मिल सकते थे। यदि हम उन सभी को एक ही व्यवसाय, जैसे कि मान लो राजमिस्त्री, के लिए प्रशिक्षित करते, तो उन सबको स्थानीय क्षेत्र में काम मिलना कठिन होता। हमें ऐसा भी महसूस हुआ कि 14 से 18 साल की उम्र के होने के कारण, वे अपना व्यवसाय चुनने के लिए पर्याप्त परिपक्व नहीं थे तथा उन्हें अपनी रुचियों को खोजने और विकसित करने के लिए कुछ और समय तथा अवसर की जरूरत थी।

यह महत्त्वपूर्ण था कि उन्हें विविध प्रकार की चीजें सीखने की स्थितियों का अनुभव हो (जैसे कि हस्तकलाएँ, संगीत, खेलकूद, भाषाएँ, दूसरी संस्कृतियों के लोगों के साथ मिलना–जुड़ना और काम करना आदि) जिनसे वे स्कूल में वंचित रहे थे। एकबारगी उनके अपना व्यवसाय चुन लेने के बाद, वास्तविक जीवन की परियोजनाओं में, उसके पेशेवर लोगों और विशेषज्ञों के मातहत प्रशिक्षार्थी के रूप में लम्बी अवधि (कम से कम कुछ सालों) तक काम करने से उसमें विशेष कुशलता हासिल करना उनके लिए सम्भव हो सकता था। इस दृष्टि से छोटी अवधियों वाले व्यावसायिक प्रशिक्षण वाले पाठ्यक्रम बहुत कम कारगर और उपयोगी होते हैं।

सेल्वन, जो एक ऐसे संकोची लड़के की तरह हमारे पास आया था जिसे अकादमिक कौशलों की अपनी कमियों के बारे में बहुत एहसास था, बहुत कम बोलता था और आँख से आँख मिलाने से बचता था, पर व्यावहारिक रूप से सीखने के इस नए माहौल में उसका व्यक्तित्व खिल उठा। जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि उसमें उत्कृष्ट गुण थे। उसका स्वभाव मृदु और उदार था। वह अपने हाथों से काम करने में वह बेहद कुशल था तथा कोई भी चुनौती स्वीकार करने और अपनी ओर से अधिकतम प्रयास करने के लिए तैयार रहता था। वह दूसरों के साथ धैर्यपूर्वक कार्य करता था। वह बहुत नाजुक किस्म के सुधार कार्य, जैसे कि बिगड़े मोबाइल फोनों को ठीक करना, भी उतनी ही सहजता से करता था जितना कि कठिन शारीरिक मेहनत लगने वाले कार्य, जैसे कि छतों को

सुधारना और बाँस का फर्नीचर बनाना। उसने इलेक्ट्रॉनिक्स के कामों में विशेष निपुणता दर्शाई, यहाँ तक कि वह ऐसे उपकरणों को भी पूरा खोलकर, सुधारकर फिर से बना दे सकता था जिन्हें उसने पहले कभी देखा भी नहीं होता था।

हमारे पास हर साल ऐसे 6 से 15 विद्यार्थियों तक के समूह आने लगे। वे हमारे पास 'असफल' और 'स्कूल छोड़ देने वाले' लोगों की तरह आते थे जिनमें बहुत ही कम आत्मविश्वास और बहुत ही ज्यादा भय होता था। लेकिन हमने पाया कि वे व्यावहारिक कौशलों को बहुत जल्दी सीखते थे और उनमें बहुत अच्छा करते थे। उनका आत्मविश्वास बढ़ गया और उसने उनके जीवन के सभी क्षेत्रों को, यहाँ तक कि अकादमिक क्षेत्र को भी, प्रभावित किया। जल्दी ही उनके माता–पिता उन पर कक्षा 10 की परीक्षा पास करने के लिए दबाव डालने लगे। विद्यार्थियों को भी गाँव में अपने हमउम्र लोगों के सामने अपने को अकादमिक रूप से साबित करने की जरूरत महसूस होने लगी। धीरे–धीरे हमारी सहायता से, एक–एक करके उनमें से अधिकांश ने, हमारे कार्यक्रम में भाग लेने के लिए थुलीर आने के साथ–साथ, निजी विद्यार्थियों की तरह यह परीक्षा देने और पास करने में भी सफलता हासिल कर ली। यह दिलचस्प परिणाम था कि जिन अकादमिक परीक्षाओं का सामना वे पहले नहीं कर पाते थे, उनसे पार पाने का आत्मविश्वास थुलीर का कामकाजी कार्यक्रम उनको देता हुआ प्रतीत होता था। अनेक विद्यार्थियों ने उसके बाद हमारी घाटी से बाहर के स्कूलों में कक्षा 11 में दाखिला लेकर आगे पढ़ाई जारी रखने का निर्णय लिया। कुछ ने तो यह फैसला 19 और 20 साल की उम्र में भी लिया! यहाँ तक कि कुछ तो बाद में डिग्री हासिल करने के लिए कालेजों में भी गए।

हमारे विद्यार्थियों में से कुछ को अपने परिवार के खेतों में काम करने के लिए वापिस जाना पड़ा। कुछ विद्यार्थियों को, जिनके परिवार गम्भीर आर्थिक कठिनाइयों का सामना कर रहे थे, अकुशल मजदूरों की तरह काम करने के लिए बाहर जाना पड़ा। उनमें से कुछ राजमिस्त्री और बढ़ई की तरह काम करने लगे। हमारे चार विद्यार्थी, जिनमें सेल्वन भी शामिल है, शिक्षकों की तरह संस्था में वापिस आ गए और छोटे बच्चों को पढ़ाने लगे तथा प्रशासनिक और परिसर के रखरखाव की जिम्मेदारियाँ भी सम्भालने लगे।

बीते वर्षों में, गाँव में बहुत से परिवर्तन हुए हैं। पहले गाँव के लोग ऐसे किसान थे जो अपनी अधिकांश खाद्य सामग्री (ज्यादातर बारिश पर आधारित बाजरा, मुर्गियाँ और बकरियाँ) खुद पैदा करते थे, पर अब वे सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम – पी.डी.एस. – अर्थात राशन की दुकानों) से मिलने वाला चावल खाने लगे हैं और ज्यादा सिंचाई माँगने वाली नकद फसलें उगाने लगे हैं। निजी स्कूलों तथा कालेजों, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच हो जाने के कारण और मोटरसाइकिलों, ट्रैक्टरों आदि के लिए ऋण सुलभ हो जाने के कारण उनकी नकद रकम की जरूरतें भी बढ़ गईं थीं। समुदाय में यह धारणा प्रबल हो गई है कि डिग्रियाँ होने से बेहतर नौकरियाँ (आमतौर पर सरकारी नौकरियाँ) मिल जाती हैं। निजी अँग्रेजी माध्यम के स्कूलों और दूर के (70 किलोमीटर दूर तक के) निजी कालेजों, जो आने–जाने के लिए घरों तक बसों की पेशकश करते हैं, के द्वारा जोरशोर से अपना प्रचार भी किया जाता है। इसलिए अब बहुत थोड़े लोग हैं जो कोई व्यवसाय या कौशल सीखना चाहते हैं।

ऐसा लगता है कि वर्तमान स्कूली शिक्षा व्यवस्था जिस सर्वोपरि सन्देश को बच्चों और उनके माता–पिता के मन में बिठा देती है, वह यही है कि केवल सफेदपोश दफ्तरी नौकरियाँ ही पाने लायक उपलब्धि हैं, और ऐसे व्यवसाय, जिनमें हाथों से काम करना पड़ता है, केवल उनके लिए हैं जो इस शिक्षा व्यवस्था में असफल हो गए हैं। इसका यह परिणाम हुआ है कि जो संस्थाएँ व्यावसायिक कौशलों की शिक्षा देती हैं, जैसे कि विभिन्न आई.टी.आई. संस्थाएँ (या हमारी संस्था), उनके पास आने वाले लोग बहुत थोड़े होते हैं। इसके साथ ही, चारों ओर सैकड़ों कालेज खुल गए हैं जो अनेक प्रकार की डिग्रियाँ प्रदान करने की पेशकश करते हैं, जिससे कि ऐसे सभी माता–पिता जिनके पास पैसा है अपने बच्चे को कोई डिग्री पाने के लिए किसी कालेज में भेज सकते हैं। पर दुखद सच्चाई यह है कि स्कूल पास करने वाले अधिकांश विद्यार्थियों में, गम्भीरता पूर्वक कोई अकादमिक डिग्री हासिल करने या यहाँ तक कि आई.टी.आई. का कोर्स करने के लिए भी, आवश्यक अकादमिक कौशल नहीं होते।

अब सेल्वन का आत्मविश्वास बढ़ गया है और वह इस क्षेत्र के सबसे अधिक माँग वाले कुशल तकनीकी कारीगरों में से एक है। लेकिन अपने को अकादमिक रूप से सफल साबित करने का दबाव अभी भी उसको महसूस होता है। वह 20

साल की उम्र में, शहर में मध्यम वेतन पर इलेक्ट्रोनिक्स का कारीगर बनने का प्रस्ताव ठुकराते हुए, वापिस हाई स्कूल गया, और अब वह कालेज में है। अकादमिक पढ़ाई अभी भी उसके लिए एक बड़ी बाधा है जिससे वह जूझ रहा है, पर उससे पार पाने के लिए और अपना प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए वह दृढ़–संकल्प है। उसे लगता है कि उसका आत्म–गौरव और दूसरों की नजरों में उसका सम्मान उसके उस महत्त्वपूर्ण कागज के टुकड़े को हासिल करने पर निर्भर करता है।

इस स्थिति को देखते हुए स्कूलों में हाथों से काम करना सिखाने की क्या गुंजाइश बचती है? अधिकांश ग्रामीण, आदिवासी और पहली पीढ़ी के सीखने वाले बच्चे इसमें बहुत अच्छा करते हैं, और इसलिए यह ऐसे बच्चों को अकादमिक विषयों का सामना करने का भी ज्यादा आत्मविश्वास देता है। हो सकता है कि शहरी बच्चों को हाथ से काम करने में थोड़ी अड़चन हो और इसलिए उन्हें वह सीखने में अधिक प्रयास करना पड़े। पर यह उनकी आँखें खोलने वाला होगा। न केवल यह उनमें हाथों से काम करने के कौशलों के प्रति, जो किसी भी समाज के बचे रहने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं, एक स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करेगा, बल्कि ऐसे कौशल–संपन्न लोगों के प्रति उनके आदरभाव को भी बढ़ाएगा। हमारे समाज में हाथों से किए जाने वाले श्रम (आज के सन्दर्भ में जिसमें सभी प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन और उन सेवा–उद्योगों की नौकरियाँ भी शामिल होंगी जिनके लिए मशीनों और औजारों के साथ काम करने की योग्यता की जरूरत होती है)। यह हमारी अर्थव्यवस्था और समाज में महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान योगदान देने वाले लोगों के रूप में, इस क्षेत्र में काम करने वाले लोगों की सहायता भी करेगा, क्योंकि तब वे अपने को ऐसे पिछड़ गए लोगों की तरह नहीं महसूस करेंगे जो 'बेहतर' सफेदपोश नौकरियाँ हासिल नहीं कर सके।

आज, स्कूल उनके आसपास के समुदाय से कटे हुए द्वीपों की तरह काम करते हैं। वयस्क लोगों के काम के बारे में जानने के लिए बच्चे सहज ही उत्सुक होते हैं। जब भी उन्हें ऐसे कामों में भाग लेने का अवसर दिया जाता है, तब वे अपने को महत्त्वपूर्ण अनुभव करते हैं। एक स्कूल विविध प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग तो करता ही है और उनके माध्यम से वह अपने आसपास के समुदाय के सम्पर्क में भी आता है। ऐसे सम्पर्क सीखने के अवसर बन सकते हैं, जिनमें बच्चे वयस्कों के काम के साथ और आसपास के समुदाय के साथ सक्रिय रूप से जुड़ सकते हैं। अतीत में गाँधी जी और विनोबा जैसे कई विचारकों ने काम और अकादमिक शिक्षा का एकीकरण करने का सुझाव दिया था। ऐसी कई दिलचस्प शैक्षिक परियोजनाएँ रही हैं, जैसे कि पाबल स्थित विज्ञान आश्रम, जिनमें ऐसा करने की कोशिश हुई है। ऐसे अनेक प्रयास हुए हैं। पश्चिम में भी, जिनमें 'काम' को स्कूल में लाने की कोशिश की गई है, जैसे कि यूके में 'स्टूडियो स्कूलों' में। फिनलैंड में व्यावसायिक विषयों को मुख्यधारा के स्कूलों का हिस्सा बनाने की कोशिश की गई है। शायद अब समय आ गया है जब हमें अपने देश में इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

आज हमारे स्कूलों में शिक्षा केवल दिमागी कौशलों को विकसित करने पर केन्द्रित है। ग्रामीण, आदिवासी और पहली पीढ़ी के सीखने वालों के लिए यह व्यवस्था अनुकूल नहीं होती। शिक्षा को 'मस्तिष्क, हृदय और हाथों' तीनों पर ध्यान देना चाहिए, अर्थात उसमें अकादमिक कौशलों, कला, शिल्पकलाओं, खेलकूद और समुदाय में काम करने को बराबर महत्त्व दिया जाना जरूरी है।

ऐसी दुनिया की कल्पना करें जहाँ व्यावहारिक, हाथों से किया जाने वाला काम स्कूली शिक्षा का अविभाज्य अंग होता। कैसा होता यदि स्कूल या समुदाय की जरूरतों से प्रेरित वास्तविक जीवन की परियोजनाओं को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता? व्यावहारिक कार्य तब सामाजिक बराबरी निर्मित करने वाला कारक बन सकता था। हमारी शिक्षा व्यवस्था तब अधिक सन्तुलित और समाज के सभी स्तरों के प्रति न्यायपूर्ण होती। ऐसी दुनिया में, हमारे देश के सेल्वनों को हीनता का एहसास नहीं होता; वे दो भिन्न संसारों में जी सकने के लिए संघर्ष न करते, बल्कि सबके साथ बराबरी के भाव सहित अपने चुने हुए क्षेत्र में फलते–फूलते!

अनु तथा कृष्ण, दोनों वास्तुकारों की तरह प्रशिक्षित हैं और पिछले 25 वर्षों से वैकल्पिक निर्माण तकनीकों, ग्रामीण युवाओं के कौशलों और वैकल्पिक शिक्षा का अन्वेषण करते हुए ग्रामीण समुदायों के साथ काम कर रहे हैं। उनसे thulir@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।